Year - 2014 Vol. 1, No. 8 Issue: October 2014

# Van Sangyan

**Tropical Forest Research Institute**
(Indian Council of Forestry Research and Education)
**PO RFRC, Mandla Road, Jabalpur – 482021**
Visit us at: **http://tfri.icfre.gov.in (or) http://tfri.icfre.org**
Write to us at: **vansangyan_tfri@icfre.org**

# From the Editor's desk

Agroforestry or agro-sylviculture, which combines agricultural and forestry technologies, is a land use management system in which trees or shrubs are grown around or among crops or pastureland. Agroforestry systems are advantageous over conventional agricultural and forest production methods offering increased productivity, economic benefits, and more diversity in the ecological goods and services provided.

This issue of Van Sangyan contains articles on Agroforestry development in Pratapgarh and on Agroforestry for food and nutrition security. There are also sections on Entomopathogenic Nematodes and other useful articles.

I hope that you would find all information in this issue relevant and valuable.

Readers of *Van Sangyan* are welcome to write to us about their views and queries on various issues in the field of forestry.

Looking forward to meet you all through forthcoming issues.

**Dr. N. Roychoudhary**

Chief Editor

## Contents Page

प्रतापगढ़ जिले में कृषि वानिकी का विकास

– कुमुद दुबे, आत्म प्रकाश तिवारी एवं आलोक पाण्डेय 1

Harnessing the benefits of agroforestry for food and nutrition security

– M. K. Behera & T. R. Pradhan 7

महानिम्ब (*Ailanthus excelsa*) व त्याचा हानीकारक किटक *अटिवा फेब्रेरीसियेला* (*Attevia fabricella*)

– डॉ. संजय पौनीकर 14

Wild edible mushroom *Morchella esculenta* (Guchii)

– Swaran Lata 17

पर्यावरण सरंक्षण एवं संतुलन में सौर ऊर्जा का महत्व

– डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं ट्रीसा हेमल्टन 20

किटक रोगजनक टोळ (निमॅटोडस) – एक प्रभावी जैविक किटकनाशक

– डॉ.संजय पौनीकर आणि डॉ. नितिन कुलकर्णी 25

Know your Biodiversity ( *Butea monosperma* & *Rucervus duvaucelii*)

– Tresa Hamalton 28

Humming bees

– Nameless 30

# प्रतापगढ़ जिले में कृषि वानिकी का विकास

**कुमुद दुबे, आत्म प्रकाश तिवारी एवं आलोक पाण्डेय**

सामाजिक वानिकी एवं पारि–पुनर्स्थापन केन्द्र, इलाहाबाद

**परिचय**

भारत एक कृषि प्रधान देश है। हमारे देश की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित हैं। देश एवं प्रदेश का एक बहुत बडा क्षेत्र कृषि जोत के रुप में उपलब्ध हैं। अतः कृषक अपने कृषि क्षेत्रों में वृक्षारोपण करके अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं तथा अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत कर सकते हैं।

वन सम्पदा के अत्यधिक दोहन तथा तीव्रता से घटते हुए वन क्षेत्रों के कारण भारत सहित सम्पूर्ण उश्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पर्यावरण सम्बन्धी गम्भीर सम्स्यायें उत्पन्न हो गई हैं। भरत में कुल भूमि के 33.3 प्रतिशत वनाच्छादित क्षेत्र के स्थान पर मात्र 19.39 प्रतिशत क्षेत्र ही वनाच्छादित हैं। उत्तरॉचल राज्य के गठन के पश्चात नये उत्तर प्रदेश में वन अवरण मात्र 4.46 प्रतिशत ही रह गया हैं। यह समस्या देश एवं प्रदेश की बढती हुई जनसंख्या के लिए ईधन चारा खाद्यान व इमारती लकडी आदि की आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु वनों के अत्यधिक भाोशण के कारण उत्पन्न हुई। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में ईधन हेतु जलौनी लकडी की मॉग लगभग 157 मि.ट.प्रतिवर्श है जबकि आपूर्ति मात्र 40 मि.ट. ही है। जलौनी की कमी के कारण लगभग 73 मि.ट. गोबर एवं 40 मि.ट. कृषि के अवशिश्ट को ईधन की तरह प्रयोग किया जाता है। जिसको कृषि क्षेत्र में मिटटी की उत्पादकता बढाने के लिए खद के रूप में प्रयोग किया जा सकता हैं। वन विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा वर्श 1998 में जारी किसे गये एक आगणन के अनुसार प्रकाश्ट अधारित कच्चे माल की सन 2000 की आवश्यकताओं में निम्न अन्तर पाया गया है:–

(हजार घन मीटर में)

| क्र स | वन उत्पाद | आवश्यकता | आपूर्ति | अन्तर |
|---|---|---|---|---|
| 1 | चिरागप्रकाश्ठकच्चामाल | 3000 | 100 | 2900 |
| 2 | पल्प बुड | 2500 | 300 | 2200 |
| 3 | अन्यऔद्योगिक प्रकाश्ठ | 3500 | 200 | 3300 |

भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा का वनों से अविच्छिन्न संबध रहा हैं तथा आदिकाल से ही मनुश्य वनों पर निर्भर रहा हैं। वनों का आवरण क्षीण हो जाने से बाढ की विभीशिकायें सूखे का प्रकोप भूमि का कटाव रेगिस्तानीकरण भूस्खलन जैसी प्राकृतिक विपदाओं की संख्या में वृद्धि हुई हैं। अतः उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में यह नितान्त आवश्यक हैं कि प्रदेश में वनाच्छादन वृक्षादन को राश्ट्रीय वन नीति के आपेक्षित मानक (33.3 प्रतिशत) के अनुरुप बढाया जाय तथा इस पूनीत कार्य में जनमानस का भी सहयोग लिया जाय। जैसा कि विदित हैं प्रदेश का एक बहुत बडा क्षेत्र कृषकों के पास हैं तथा उनकों उचित मार्गदर्शन प्रदान कर कृषिवानिकी पद्धति को अपनाये जाने हेतु बल दिये जानें की आवश्यकता हैं ए जिससे चारे जलौनी एवं इमारती लकडी की आपूर्ति सुनिचित हो सके। यदि प्रदेश के कृषकों को अपनी भूमि पर वृक्षारोपण हेतु प्रोत्साहित किया जाये तो अनेक समस्याओं का निदान प्राप्त किया जा सकता हैं।

प्रचीन काल से ही वृक्षों को खेतों के किनारे कही–कही फसलों के साथ तालाब के किनारे रोपित किया जाता रहा हैं। कई स्थानों पर इस पद्धति को टांग्या पद्धति के नाम से भी जाना जाता था। जनसंख्या वृद्धि के कारण ईधन चारा इमारती लकडी की मांग

बढी हैं। इनकी अपूर्ती के लिये वन क्षेत्र में वृद्धि संम्भव नहीं हैंष्अतः वानिकी को एक ही भूमि पर साथ–साथ उगाने की पद्धति को कृषि वानिकी कहा जाता हैं। सर्वप्रथम खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ•ए•ओ•) द्वारा वानिकी एवं कृषि को एक साथ सम्मिलित करने का सुझाव दिया गया था। इस क्रम में वर्श 1977 में अंन्तराश्ट्रीय कृषि वानिकी अनुसंन्धान केन्द्र (आई•सी•आर•ए•एफ•) की स्थापना नैरोबी (केन्या) में हुई।

**कृषि वानिकी की परिभाशा एवं आवश्यकता**

कृषि वानिकी का अर्थ है एक ही भूमि पर कृषि फसल एवं वृक्ष प्रजातियों को विधिपूर्वक रोपित कर दोनों प्रकार की उपज को प्राप्त करना बेन तथा अन्य 1977 के अनुसार कृषि वानिकी ऐसा प्रबन्धन है जिसमें उत्पादन बढता है। नायर 1979 के अनुसार कृषि वानिकी वृक्षों फसलों और पशूओं को वैज्ञानिक तरिके से जोडता है। जो कि पारिस्थितिकीय रुप में वॉछित प्रायोगिक रुप से उत्तम व सामाजिक रुप से स्वीकारने योग्य है। आई• सी• आर• ए• एफ• नौरोबी केन्या की परिभाशा के अनुसार कृषि वानिकी समस्त भूमि सुधारक प्रक्रियाओं का सम्मिलित नाम है जहॉ काश्ठीय फसलों के साथ उगायी जाती हैं।

सचेज 1987 के अनुसार उपयुक्त कृषि वानिकी प्रणाली मृदा के भौतिक गुणों को बढाती हैं। अतः यदि उपयुक्त वृक्षों व कृषि फसलो का चयन किया जाये तो उत्पादन बढाया जा सकता हैं। तिवारी 1995 के अनुसार नाइट्रोजन स्थिरीकरण में सहायक वृक्षों को कृषि वानिकी के उगाये जाने पर वे लगभग 50 से 100 किग्रा. नत्रजन हैं/हे./वर्श तक स्थिर करते हैं। हरियाण पंजाब उत्तर प्रदेश गुजरात व दक्षिणी भारत के कुछ स्थानों के अनुभव यह बताते है कि कृषिवानिकी प्रणाली अधिक उत्तम हैं। अतः कृषि वानिकी को अपनाये जाने की आवश्यकता हेतु प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करणों को निम्न प्रकार क्रमबद्ध किया जा सकता हैं।:–

- बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये चारे ईधन इमाररती लकडी की कमी का निवारण किया जाना ।
- उपलब्ध प्राकृतिक वनों पर जैविक दबाव को कम किया जाना। भूमि के एक निश्चित क्षेत्रफल से अधिक पैदावार प्राप्त किया जाना।
- पशुओं की संख्या में वृद्धि के कारण अधिक चराई के दबाव को कम किया जाना।
- परती भूमि में उपयुक्त वृक्षारोपण की तकनीक व प्रजातियों को कृषि फसलों के साथ रोपित कर भूमि की उत्पादकता में वृद्धि किया जाना।
- पर्यावरण प्रदुशण को वनाच्छादन के माध्यम से कम किया जाना ।
- भू–क्षरण पर रोक एवं मृदा की उर्वरकता में वृद्धि करना।
- उद्योगों हेतु कच्चे माल की आपूर्ति सूनिश्चित करना।
- कृषि उत्पादन बढ़ाने व आर्थिक उन्नति के साथ रोजगार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अवसर प्रदान करने में सहायता प्रदान करना।

प्रस्तुत शोधपत्र में जिला प्रतापगढ़ (उ0प्र0) का सर्वेक्षण प्रश्नोत्तरी के माध्यम से किया गया एवं कृषि वानिकी का ग्रामीण विकास में भूमिका का अध्ययन किया गया।

**विधि एवं सामग्री**

प्रस्तुत अध्ययन के लिए जिला प्रतापगढ़ का चयन किया गया जो कि गंगा क्षेत्र में स्थित है एवं आंवला उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है। जिला प्रतापगढ़ (उ0प्र0) में अक्रमबद्ध (Randomly) ढंग से चयनित गावों का सर्वेक्षण प्रश्नोत्तरी के माध्यम से किया गया एवं कृषि वानिकी का ग्रामीण विकास में भूमिका का अध्ययन किया गया। प्रश्नोत्तरी में व्यक्तिगत सूचना जैसे नाम, पता, शैक्षिक स्तर, वार्शिक आय इत्यादि के बारे में एवं कृषि वानिकी से सम्बद्वित प्रश्नों को पूछा गया। कृषि वानिकी में उनके रुझान, उनकी पसन्द, उनकी तकनीकी सम्बन्धी आवश्यकताओं से सम्बन्धित प्रश्नों को पूछा गया एवं कृषि वानिकी से सम्बन्धित उनके सुझावों को लिया गया।

**परिणाम**

सर्वेक्षण में इस क्षेत्र के 89% लोग शिक्षित पाये गये (ग्राफ–1)। लगभग 33% लोगों की वार्षिक आय लगभग रू0 10,000/– सलाना है जबकि 67% लोगों की आय रू0 10,000/– से 50,000/– है (ग्राफ–2)। वृक्षो से होने वाले लाभ से लोग भलिभाँति परिचित है व लोगों की 13% दैनिक आवश्यकता वृक्षों से पूरी की जाती है (ग्राफ–3)। पचपन प्रतिशत लोगों का मानना है कि स्वतंत्रता के बाद वृक्षादन में 40–60 प्रतिशत की कमी आयी है (ग्राफ–4)। वृक्षादन में आयी कमी मौसम की अनियमितता का एक प्रमुख कारण है (ग्राफ–5)। यहाँ पर लोगों को कृषि वानिकी से होने वाला लाभ की जानकारी है। सर्वेक्षण में पाया गया कि 29% प्रतिशत लोग कृषि वानिकी से होने वाले लाभ से परिचित हैं, वहीं पर 71% लोग मानते हैं कि उन्हें इस विषय में आंशिक रूप से पता है (ग्राफ–6)। वृक्ष लगाने का विचार उन्हें पारम्परिक रूप से प्राप्त हुआ है। ऐसा लगभग 50% लोग मानते हैं जबकि 18% लोगों को दूसरों से प्रेरणा मिली। वन विभाग से मात्र 7 प्रतिशत लोगों का वृक्ष लगाने का विचार आया जबकि 15% लोग दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वृक्ष लगाते हैं तथा 10% लोग अतिरिक्त आय प्राप्त करने हेतु लोग वृक्ष लगाते हैं (ग्राफ–7)। परम्परागत रुप से यहाँ के किसान आंवला एवं सागौन के साथ कृषि वानिकी करते रेह हैं। यहाँ के 42% लोग फलदार वृक्षों को प्राथमिकता देते हैं जबकि 48% लोग कीमती इमारती लकड़ी को महत्व देते हैं (ग्राफ–8)।

इस क्षेत्र में 36% लोग मानते हैं कि कृषि वानिकी नहीं अपनाने का महत्वपूर्ण कारण इसकी जानकारी नहीं होना है, जबकि 36% ही लोगों का मानना है कि इन्हें तकनीकी की जानकारी का अभाव है। मात्र 9% लोगों का मानना है कि वृक्षों की बेचने की सुविधा के अभाव में पेड़ नहीं लगाते हैं, वहीं 19% लोगों को समय पर पौधों का नहीं मिलना मानते हैं (ग्राफ–9)।

इस क्षेत्र में कृषि वानिकी अपनाने में मुख्य समस्या वृक्ष नहीं काट पाना मानते हैं। जिसका मुख्य कारण 83: लोग पुलिस से परेशानी एवं विचौलियों की पुलिस से साँठ–गाँठ मानते हैं। 33 प्रतिशत किसान अपने खेतों के मेड़ों पर वृक्षों को लगाना चाहते हैं। 67 प्रतिशत लोग अपने खेत के मेड़ों पर वृक्षों को नहीं लगाना चाहते है क्योंकि उनका मानना है कि वृक्षों से कृषि फसलों की पैदावार पर कमी आयेगी। उसर भूमि में 100% किसान कृषि वानिकी अपनाना चाहते हैं। कृषि वानिकी में जन सहयोग में कमी के कारण जनचेतना/जागरूकता का अभाव व विभागीय असहयोग मानते हैं। कृषकों द्वारा चयनित प्राथमिकता वाली प्रमुख कृषि वानिकी प्रजातियां आंवला, सागौन, युकेलिप्टस इत्यादि हैं (ग्राफ–10)। कृषि वानिकी को बढ़ावा देने के लिए कृषको द्वारा निम्न सुझाव दिए गए:

- समाज के हर एक वर्ग को ध्यान में रखते हुए के लिए पौधारोपण कर्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए।
- सामजिक वानिकी को बढावा देने वाले व्यक्तियों को रोजगार में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- सामजिक वानिकी कार्यक्रम में उत्तम कार्य करने वाले व्यक्तियों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए।
- सार्वजनिक वृक्षों की रक्षा करने वाले व्यक्तियों व संस्था को विभाग द्वारा पुरस्कृत किया जाना चाहिए।
- वृक्षारोपण के लिए ऋण व बीमा की सुविधा होनी चाहिए।
- वृक्ष उत्पादों के लिए सरकार द्वारा समर्थन मूल्य दिया जाना चाहिए।
- लघु व सीमान्त किसानों के लिए विषेश कृषि वानिकी मॉडल तैयार किया जाना चाहिए।
- बाजार की उपलब्धता होनी चाहिए।

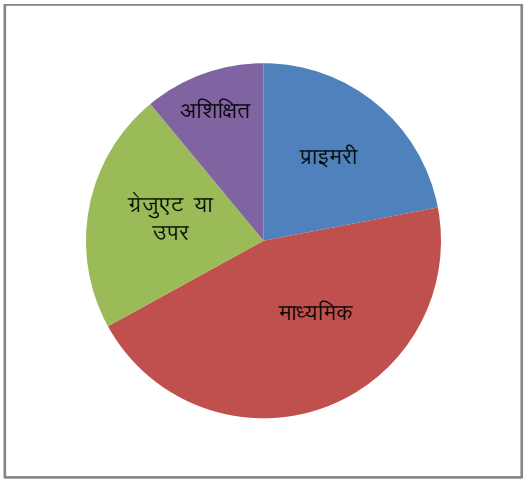


ग्राफ–1: भौक्षणिक स्तर

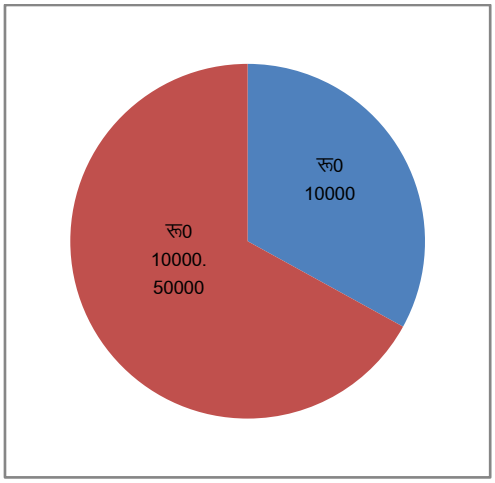


ग्राफ–2: वार्षिक आय

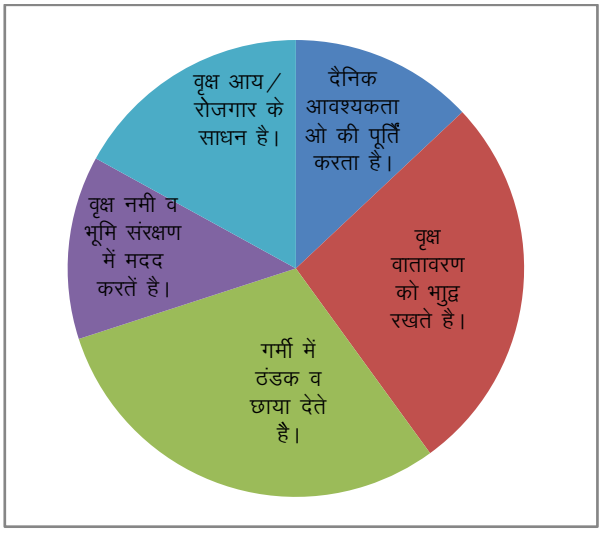


ग्राफ–3: वृक्षो से होने वाले लाभ

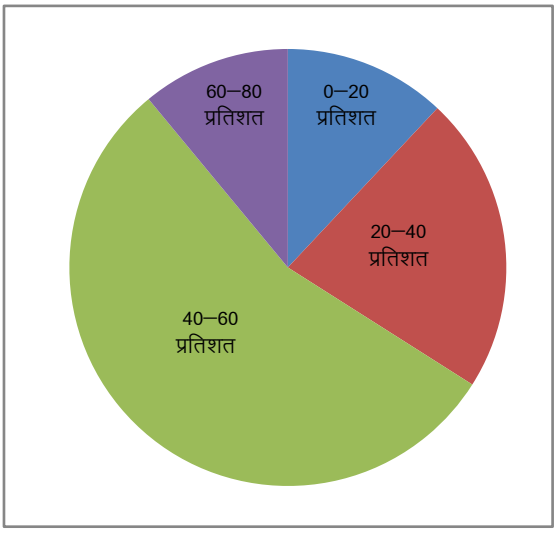


ग्राफ–4: स्वतन्त्रता के बाद वृक्षादन में आयी कमी

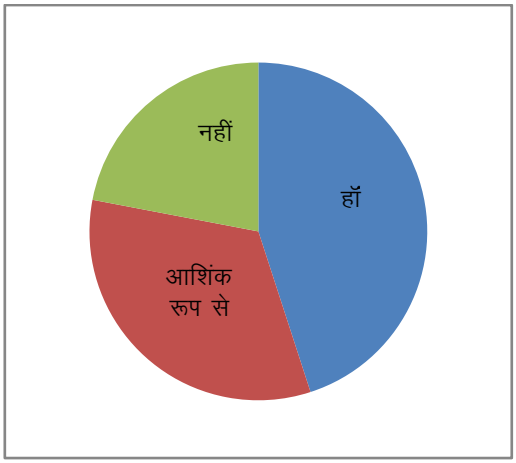


ग्राफ–5: वृक्षाच्छादन में आयी कमी को मौसम में अनिमियतता का कारण

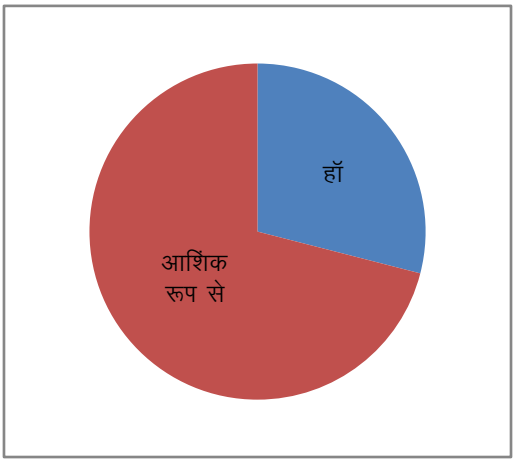


ग्राफ–6: कृषि वानिकी से होने वाले लाभ से परिचित

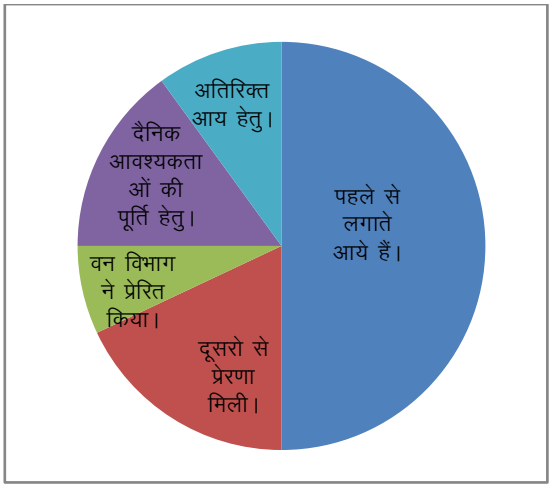


ग्राफ–7: वृक्ष लगाने का विचार कैसे आया ?

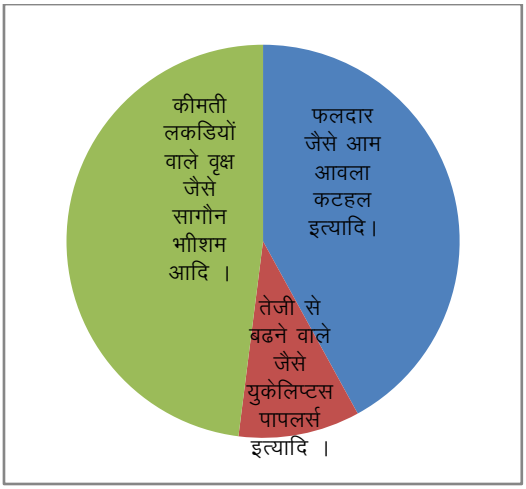


ग्राफ–8: कृषि वानिकी में आप किस तरह के वृक्ष लगाना चाहेगें?

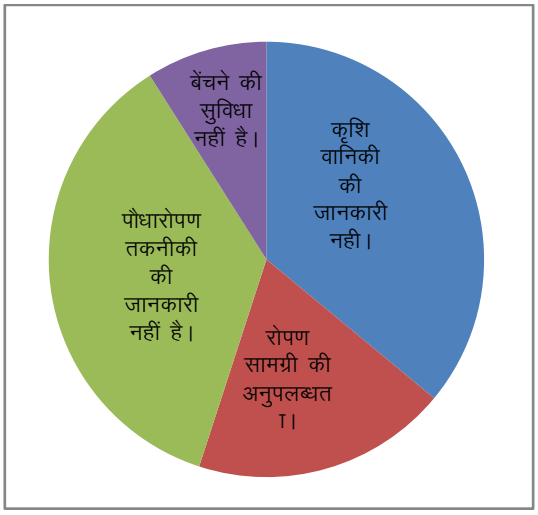


ग्राफ–9: कृषि वानिकी न अपनाने का मुख्य कारण

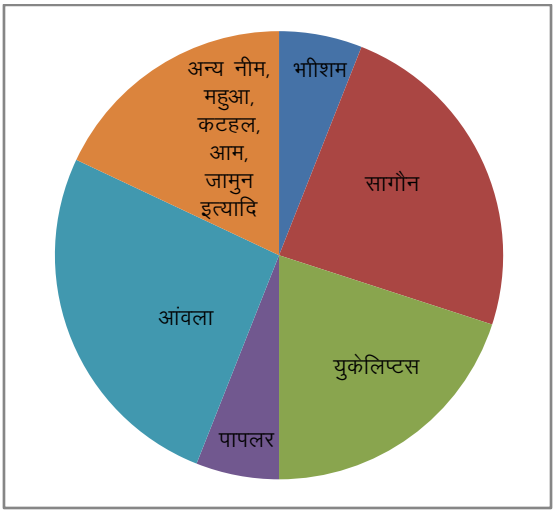


ग्राफ–10: कषकों द्वारा चयनित प्राथमिकता वाली प्रमुख कृषि वानिकी प्रजातियां

सारणी–1: कृषि वानिकी को अपनाने में आने वाली प्रमुख अड़चनें

| कृषि वानिकी को अपनाने में प्रमुख अड़चनें | औसत | सामान्य | प्रमुख |
|---|---|---|---|
| वृक्षों को काटने में कानूनी समस्यायें। | | | ✓ |
| वानिकी के वृक्षों का दुश्प्रभाव। | | | ✓ |
| मेंड़ों पर पेड़ लगाने में आपसी मतभेद। | | ✓ | |
| बाजार की अनुपलब्धता। | | ✓ | |
| कृषि वानिकी की जानकारी न होना। | | ✓ | |
| उच्च गुणवत्ता वाले वानिकी पौधों की अनुपलब्धता। | | ✓ | |
| लम्बे अन्तराल के बाद वानिकी से लाभ पाना। | ✓ | | |
| कम कृषि भूमि की उपलब्धता। | ✓ | | |
| अन्य। | ✓ | | |

कृषि वानिकी को अपनाने में आने वाली प्रमुख चिन्हित अड़चनों को सारणी–1 मे दर्शाया गया हैं। सर्वेक्षण से वृक्षों को काटने में आने वाली विभिन्न समस्यायें एवं वानिकी प्रजातियों का कृषि फसलों पर दुश्प्रभाव कृषि वानिकी को अपनाने में प्रमुख बाधा मानी गयी है।

कृषि वानिकी खेती को संपोशणीय (Sustainable) बनाने में महत्वपुर्ण भूमिका निभाता हैं। जैसा कि अभी हाल के कुछ वर्शो में हुए अनुसंधानों से विदित हुआ हैं। सघन पद्धतियों के अपनाने से उचित फसल चक्र न अपनाने से अन्धाधुन्ध रसायनों के छिडकाव उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग और भू–क्षरण आदि से भूमि की उर्वरता घटी हैं। उर्वरकों का फसल उत्पादन के प्रति प्रभाव घटा हुआ हैं। उपज में स्थिरता आ चुकी हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों में कृषि –वानिकी ही एक अच्छा विकल्प हो सकता हैं। विशेशकर उत्पादन बढानें एवं पर्यावरण सन्तुलन में। अतः निश्चित तौर पर कहा जा सकता हैं कि कृषि वानिकी को अपनाने की अत्यन्त आवश्यकता तो हैं अपितु भविश्य में इसकी अच्छी सम्भावनाए भी विद्यमान हैं।

**निष्कर्ष** –उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कृषि वानिकी तकनीकी के बारे में प्रचार प्रसार, उच्च गुणवत्ता वाले वृक्ष प्रजातियों की उपलब्धता, उत्पाद की समुचित बाजार की उपलब्धता, उचित कृषि वानिकी माडलों का विकास करके कुषि वानिकी को बढ़ावा दिया जा सकता है। कृषि वानिकी को बढ़ावा देकर वृक्षादन में वृद्धि के साथ–साथ रोज मर्रा की चारा, जलावनी एवं इमारती लकड़ियों की आवश्यकता की पूर्ति कर सकते हैं। कृषि वानिकी से किसान अपनी सीमित कृषि भूमि से अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं। अतः कृषि वानिकी क्षेत्र के विकास में प्रमुख भूमिका निभा सकता है एवं आधुनिक युग में सीमित संसाधनों को देखते हुए कृषि वानिकी को अपनाना कृषकों की आवश्यकता है। अतः प्रतापगढ़ क्षेत्र में कृषि वानिकी को बढ़ावा देने से प्रचुर मात्रा में कृषि वानिकी लोगों द्वारा उपजाई जा सकती है।

**संदर्भ**

1– नायर पी0के0 1993 एवं इन्टोडक्शन टू एग्रोफारेस्टरी क्लूवर एकेडमिक पब्लिशर्स, आइ0सी0आर0ए0एफ नैरोनी कन्या पब्लीकेशन

2– ढोन, जे0जी0 1977 ट्री फूड एण्ड पीपल– लैण्ड मैनेजमेन्ट इन द टापिक्स इन्टरनेशनल डेवलपमेन्ट एण्ड रिसर्च सेन्टर ओटावा।

3– आत्म प्रकाश तिवारी 2009, कृषिवानिकी का ग्रामीण विकास मे महत्व एक अध्ययन लघु परियोजना रिपोर्ट, नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय जमुनीपुर, इलाहाबाद अन्तर्गत डा0 कुमुद दूबे, सी0एस0एफ0ई0आर0 इलाहाबाद।

4– तिवारी, डी0 एन0 1999 एग्रोफारेस्टरी फॉर इनकीस्ड प्रोडक्टीविटी सस्टेनेबिलीटी एण्ड पावरटी एलीविएशन इन्टरनेशनल बुक डिस्टीब्यूटर्स एण्ड पब्लीसर्स देहरादून इण्डिया।

5– सान्चेज, पी0 ए0 1987 स्वाइल प्रोडक्टीविटी एण्ड सस्टेनेबिलीटी इन एग्रोफारेस्टी सिस्टम इन एग्रोफारेस्टी ए डिकेड ऑफ डेवलपमेंट आइ0सी0आर0ए0एफ नैरोनी कन्या पब्लीकेशन

# Harnessing the benefits of agroforestry for food and nutrition security

**M. K. Behera & T. R. Pradhan**

Orissa University of Agriculture & Technology (OUAT), Bhubaneswar

There is a high existence of hungry and malnourished people pulling the growth engine of India. The situation seems to be more critical in the near future as Indian agriculture which serves as primary source of livelihood for seventy percent of its population, is under severe threats of climate change. The importance of climate smart agricultural methods where tree is a key component has been realized and advocated at global level as climate change poses severe threats to Indian agriculture. Though, agroforestry systems like homegardens exist in almost all parts of India, an integrated approach is yet to be put in place to harness the multiple benefits of agroforestry practice which can ensure food and nutrition security at household level while addressing climate change concerns.

Though India was successful in achieving self-sufficiency by increasing its food production and also strengthened its capacity to cope with fluctuations in food production over years after the green revolution, it could not solve the problem of chronic household food and nutrition insecurity of millions. According to Swaminathan (2013), given that India's population is likely to reach 1.5 billion by 2030, the challenge facing the country is to produce more and more from diminishing per capita arable land and irrigation water resources and expanding abiotic and biotic stresses. With regard to nutritional security, India is lagging behind other developing countries. To our surprise, every third woman in India is undernourished and every second woman is anaemic. The situation seems to be worsened with high incidence of babies born with low birth weight, more susceptible to infections, more likely to experience growth failure, reflected in high levels of child under-nutrition and anaemia. Nearly every second young child in India today is undernourished.

Indian agriculture sector, which provides livelihoods to more than 70 percent of people, is now at cross roads as the impact of climate change has led to the fluctuation in food production and supply. Therefore, it needs a sustainable land use practice which will enable the country to meet the food and nutrition demand while ensuring the safety of environment. Agroforestry is one such viable option which can address the issue of hunger and malnutrition at household level. It is defined as a land use system which integrates trees and shrubs on farmlands and rural landscapes to enhance productivity, profitability, diversity and ecosystem

sustainability. It is a dynamic, ecologically based, natural resource management system that, through integration of woody perennials on farms and in the agricultural landscape, diversifies and sustains production and builds social institutions. It is high time to realize the multiple benefits of agroforestry and work on it to see a hunger free and shining India. Prioritizing agroforestry over monocropping of staple crops faces serious critics on the ground that it will reduce the yield of intercrops; thus may threaten the food security of the nation. If we move with the ground reality, the slight reduction in yield of staples will be compensated by other direct and indirect services provided by the tree component. Besides farmers' fields, agroforestry has the potential to reclaim large area of wastelands across the country which is not suitable for annual crops and thus can supplement to Indian food basket.

**Food security**

The term "food security" was first used in the international development literature of the 1960s and 1970s, and referred to the ability of a country or region to assure adequate food supply for its current and projected population. The World Food Summit in 1996 redefined food security as a situation in which "all people, at all times, have access to sufficient, safe and nutritious food to meet their dietary needs and food preferences for an active and healthy life". This definition encompasses whole lot of pre-requisites for food security and brings into focus the linkage between food, nutrition and health. Food and nutrition security is broadly characterized by four pillars: availability, accessibility, absorption (nutritional outcomes) and the stability of these three indicators over time. Food and nutrition security are intimately interconnected, since only a food based approach can help in overcoming malnutrition in an economically and socially sustainable manner (Swaminathan and Bhavani, 2013).

**Present Scenario of food production and availability**

The self sufficiency of India in ensuring foods for its large populations has been threatened by the impacts of climate change. Although, in 2011-12, the production of food grains was highest i.e. 259.3 million tonnes, it again reduced to 257.1 million tonnes during 2012-13 (Economic Survey, 2013).

The per capita availability of food grains, fruits and vegetables are sufficient to meet the requirements recommended by the ICMR Expert Committee on RDA (NIN Bulletin, 2013). However, the availability of milk, eggs and meat are not adequate to cope with the recommended amounts per individual (Table-1). These animal products are essential food items for a balanced diet to meet the requirements for proteins, vitamins, and minerals. Though, significant progress has been made in recent years to increase the per

capita availability of animal products, more work needs to be undertaken to ensure that each individual is getting more amounts of plant and animal products that which is prescribed by ICMR.

There exists a wide gap in regard to calorie required to actual calorie intake for different stages of growth of human beings. Pregnant and lactating women and children especially preschool children have long been recognized as being nutritionally vulnerable segments of population. The calorie requirements for pregnant and lactating mothers are 2580 and 2730 Kcal/day against the availability of 1726 and 1878 Kcal/day respectively. Bridging the gap in pregnant and lactating women is of vital importance as this would serve benefiting both the mother and the child.

Solving the problem of food and nutritional security requires, among other interventions, a range of interconnected agricultural approaches, including improvements in staple crop productivity, the biofortification of staples, and the cultivation of a wider range of edible plants that provide fruits, nuts, vegetables, etc., for more diverse diets (Frison *et al.,* 2011).

**Serious issues around Food and Nutrition Security**

The Inter-Governmental Panel on Climate Change and the India Meteorological Department reports a 2- to 4-degree increase in mean temperatures (FAO–Government of India 2009) and this is likely to adversely impact the production of food crops. Climate change affects not only agricultural production systems and thereby food availability, but also people's ability to access food, which in turn has implications on nutritional concerns. It is observed in the recent days that the frequency of droughts and erratic climatic conditions are increasing and results in heavy loss of life and food. Based on various assumptions, the IFPRI's International Model for Policy Analysis of Agricultural Commodities and Trade (IMPACT) model (Nelson *et al.* 2009) shows that South Asia is likely to be the region worst hit by climate change, taking a heavy toll on its irrigated crops.

**Table 1 Status of availability of food items**

| Food items | Per capita availability | ICMR dietary guidelines for Indians | Surplus/Deficit |
|---|---|---|---|
| Foodgrains | 510g | 480g/day | +30 |
| Milk | 295 g/day | 300g/day | -5 |
| Egg | 55 nos/annum | 180 eggs/annum | -125 |
| Meat | 3.24 kg/annum | 10.95kg/annum | -7.71 |
| Fruits | 172g/day | 100g/day | +72 |
| Vegetables | 350g/day | 200g/day | +150 |

*Source- Economic Survey, 2012-13, Planning Commission Report, 2008 and Nutrition Foundation of India Bulletin, 2013.*

In spite of the increase in per capita real expenditure during the period 1972-73 to 2004-05, the per capita cereal intake declined in both rural and urban areas. However, the fall in cereal consumption was offset by increase in the consumption of non-cereal food. It is now widely recognized that the food basket is more diversified and dramatic changes in food consumption patterns have taken place in India in the post-Green Revolution period.

There have been many studies on demand and supply projections. Mittal (2006) projected demand for rice at 84.2 million tonnes for 2011, 96.4 million tonnes for 2021, and 101.5 million tonnes for 2026. The corresponding supply projections are 95.7, 105.8, and 111.2 million tonnes respectively, envisaging a surplus of 11.46, 9.38, and 9.73 million tonnes respectively. Mittal's projections for wheat demand are 59.8, 66.1, and 68.1 million tonnes respectively for the above mentioned years as compared to the supply projections of 80.2, 91.6, and 97.9 million tones indicating a surplus of 20.41, 25.53, and 29.84 million tonnes for 2011, 2021, and 2026 respectively. For total cereals, the projected surpluses are 27.59, 12.76, and 4.63 million tonnes. This implies that there is a gap in the supply against the demand and it will be aggravated in near future as India is experiencing an explosion in population growth.

If the WTO brings high prospects for the Indian Agriculture, it also brings in some hard boiled challenges in front of it. The challenges are mostly on subsidies and Public Distribution System (PDS) of India. According to the agricultural provisions, the total subsidies forwarded by the Government to the sector must not cross 10 percent of the total agricultural outputs. At the same time, exemptions to farmers are to be withdrawn. This will hamper the PDS badly and will pose serious threats for food and nutrition security of people of India.

India's Food Security Bill, 2013 is considered as a land mark bill to make the right to food a legal entitlement. However, it suffers from few drawbacks, which are as follows:

- It does not specify any time frame for rolling out the entitlements and the grievances redressal of the states in the Bill.
- It continues with a targeted PDS.
- Although an adult requires 14kgs of food grains per month and children 7kgs, the Bill provides only 5kgs of food grains per person per month.
- It does not provide any agriculture and production related entitlements for farmers in spite of the fact that more than 60% people depend on agriculture for their livelihoods.

**Agroforestry**

Agroforestry, the integration of trees with annual crop cultivation, livestock production and other farm activities, is a series of land management approaches practised by more than 1.2 billion people worldwide. Integration increases farm productivity when the various components occupy complementary niches and their associations are managed effectively (Steffan-Dewenter *et al*., 2007). In broad sense, agroforestry is the practice of raising trees in the farmlands.

As per the FSI report, 2013, the estimated total tree green cover in the agroforestry system of the country is estimated as 111,554 sq km which is 3.39 percent of country's geographical area. The total volume of wood found in the agroforestry system is 1,023 m.cu.m and the total carbon stock estimated in the agroforestry system is 280 million tonnes. The report of the Task force on Greening India for livelihood security and sustainable development, Planning Commission, 2001 assessed that there is a potential of viable agroforestry in 10 million ha irrigated land and further 18 million ha could be brought in subsistence agroforestry. The implementation of such land use practice in rainfed area will help in poverty alleviation of 30 million people in India (FSI, 2013), thus reducing the number of hungry people. In this context agroforestry should be given due importance under NREGS by ensuring community participation and decentralized governance. There is also scope for agroforestry under CDM and REDD+ activities, which have tremendous potential to address all the issues in a holistic way.

**Role of agroforestry in food and nutrition security**

Agroforestry practice provides multiple products to the farmers from the same piece of land while maintaining soil fertility. By incorporating wild trees into cultivation, we can increase yields of agriculture crops as trees add nitrogen into the soil and provide protection against the too hot and cold temperatures, and strong winds. Thus, a combination of indigenous and exotic tree foods in agroforestry systems supports nutrition, the stability of production and farmer income. Mixtures of fruit trees that spread production, provide a year-round supply of important nutrients. In an initiative in East Africa, more than 200000 smallholder dairy farmers are growing fodder shrubs as supplementary feed. The typical increase in milk yield achieved by farmers is enabling them to raise extra revenue from milk sales of more than US$100 per cow per year, and allowing them to provide more milk to urban consumers (Place *et al.,* 2009).

**Table 2 Nutritious fruit trees commonly found in Agroforestry**

| Common Name | Botanical Name | Source of Nutrients |
|---|---|---|
| Cashew Nut | *Annacardium occidentale* | Rich in protein and fibre |
| Almond | *Prunus dulsis* | Rich in Fe, Cu and vitamin-B1 |
| Ber | *Ziziphus mauritiana* | Rich in vitamin-C, Na and K |
| Aonla | *Emblica officinalis* | Rich in vitamin-C, Na and K |
| Jackfruit | *Artocarpus heterophylus* | Rich in vitamin-B, C and K |
| Mango | *Mangifera indica* | Excellent source of vitamin-A and flavonoids |
| Pappaya | *Carica papaya* | Excellent source of vitamin- C and flavonoids |
| Sapota | *Acharas sapota* | Rich in dietary fibre |
| Bael | *Aegle mormalus* | Rich in vitamin- C, K, Fe and flavonoids |

Agro-forestry helps in enhancing the income of farmers by supplying multiple products from the same piece of land. According to a study by the National Institute of Agricultural Marketing (NIAM, Jeypore) as many as 75% to 80%, farmers have homestead gardens in Assam, with incomes ranging from Rs. 15,000 to 50,000 per annum and in some cases, more than Rs. 50,000. Similarly in Kerala, home gardens are contributing about 82% the state's fuel wood and 41% of its timber, thus generating additional income for households.

Traditional energy sources have received little attention in current energy debates, but fuelwood and charcoal from trees are crucial for the survival and well-being of perhaps two billion people, enabling them to cook food to make it safe for consumption and palatable and to release the energy within it (FAO, 2008). In sub-Saharan Africa, the use of charcoal and fuelwood is still increasing rapidly; the value of the charcoal industry there was approximately US$8 billion in 2007 (World Bank, 2011). The fuelwood and charcoal industries are therefore important for food and nutritional security, because they both produce energy and generate income; with the increasing prices of 'modern' energy sources, this is likely to remain so for some time.

An array of ecosystem services provided by agroforestry trees provided include soil, spring, stream and watershed protection, animal and plant biodiversity conservation, and carbon sequestration and storage, all of which ultimately affect food and nutritional security. Individual farmers can be encouraged to preserve and reinforce these functions, which extend beyond their farms, by payments for ecosystem services.

**Conclusion**

The issue of food and nutrition security seems to be more important for India as it is predicted to overcome China by 2050 to become the most populous country in the

world. Therefore, food security through increased productivity along with wise and judicial se of natural resources is the need of the hour. Though, the recognition and potential of agroforestry has been felt in recent years, a lot of issues are yet to be addressed in an organized way. The farmers should be provided incentives and loans to practice agroforestry in large scale. The transfer of technologies from lab to land and land to lab can supplement the research on agroforestry and help farmers to achieve their goals. The policy level reforms are needed to be prioritized to make it more participatory and farmer-friendly. Success in agroforestry will not only help in ensuring food and nutrition security at household level, but also pave the way for a hunger free, healthy and shining India.

**References**


Economic Survey 2013-14, Ministry of Finance. Govt. of India.

FAO, WFP and IFAD. 2012. The State of Food Insecurity in the World 2012.Economic growth is necessary but not sufficient to accelerate reduction of hunger and malnutrition. *Rome, FAO.*

FAO.2008. *The state of food and agriculture. Biofuels: prospects, risks and opportunities.* Rome.

Food and Agriculture Organization (FAO). 2013. Towards Food security and improved Nutrition: Increasing the contribution of forests and trees. *Report of International Conference on Forests for Food Security and Nutrition, May-2013*. 12969E/1/10.13: pp- 1-13.

Frison, E.A., Cherfas, J. & Hodgkin, T**.** 2011. Agricultural biodiversity is essential for a sustainable improvementin food and nutrition security. *Sustainability*, 3, 238–253.

Kadiyala, Suneetha.; Joshi, P. K.; Mahendra Dev, S.; Nanda Kumar T. and Vyas Vijay.2012. A Nutrition Secure India-Role of Agriculture. *Economic and Political Weekly, February 25, 2012*. XLVII(8): 21-25.

Leakey, R.R.B.2010. Agroforestry: a delivery mechanism for multi-functional agriculture. *In* L.R. Kellimore, ed.*Handbook on agroforestry: management practices and environmental impact*, pp. 461–471. Environmental

Place, F., Roothaert, R., Maina, L., Franzel, S., Sinja, J. & Wanjiku, J**.** 2009. *The impact of fodder trees on milk production and income among smallholder dairy farmers in East Africa and the role of research*. ICRAFOccasional Paper No. 12. Nairobi, World Agroforestry Centre.

Roshetko, J.M., Lasco, R.D. & Delos Angeles, M.S**.** 2007a. Smallholder agroforestry systems for carbon storage. *Mitigation and Adaptation Strategies for Global Change*, 12: 219–242.

State Forest report, 2013, Ministry of Environment and Forests (MoEF), Govt. of India.

Steffan-Dewenter, I., Kessler, M., Barkmann, J., Bos, M.M., Buchori, D. & Erasmi, S. *et al*. 2007. Tradeoffs between income, biodiversity, and ecosystem functioning during tropical rainforest conversion and agroforestry intensification. *Proceedings of the National Academy of Sciences of the USA*, 104: 4973–4978.

Swaminathan, M.S. and Bhavani, R. V. 2013. Food production and availability- Essential prerequisites for sustainable food security. *Indian Journal of Medical Research*. 138: 383-391.

World Agroforestry center (ICRAF). 2013. Agroforestry, food and Nutrition Security. *Background paper for the International Conference on Forests for Food Security and Nutrition, FAO, Rome*, 13–15 May 2013: pp-1-20.

World Bank.2011. *Wood-based biomass energy development for sub-Saharan Africa: issues and approaches*. Washington, DC.

# महानिम्ब (*Ailanthus excelsa*) व त्याचा हानीकारक किटक *अटिवा फेब्रेरीसियेला* (*Attevia fabricella*)

**डॉ. संजय पौनीकर**

वन किटक विज्ञान शाखा, उष्ण कटिंबधिय वन संशोधन संस्था, जबलपुर

सगळया प्रकारची फुलपाखरे (Butterfly) आणि पतंग (Moth) अपृष्ठंवशिय वर्गाचा शल्क असणारे (Order-Lepidoptera) गटात येतात. यांना दो जोडी पंख असतात, ज्यावर रंगीन चित्रकारी असते. यांचा मुखाच्या समोरचा भागात एक लंबी सोंड असल्यामुळे त्या फुलांचा रस चांगल्याप्रमाणें चूसता येते. सोंडाची बनावट काही प्रमाणात घडीचा कमानी सारखी असते त्यामुळे चिपकून यांचा मुख–भागाचा खाली लपली राहतें.

आपल्या इकडे पतंगाचा अनेक प्रकारच्या प्रजाती आहेत ज्यांना आपण नेहमी प्रकाशाचा आस–पास पाहतो यामध्ये काही लहान असतात व काही मोठे असतात. काही पंतग आपल्यासाठी फारच उपयोगाचा असतात जसे रेशीमची किड़ ज्यापासुन आपल्याला फारच सुंदर रेशीम मिळतो. काही हानीकारक प्रजाती पण असतात जे आपल्या फुल झाडांना फार मोठ्या प्रमाणात नुकसान करतात.

या लेखात महानिम्बला नुकसान करणारे किटक, *अटिवा फेब्रेरीसियेला* (*Attevia fabricella*) ची तपशील माहिती जसे नुकसान करण्यांचा प्रकार आणि त्यापासुन बचाव करण्यासचा उपाय इत्यादीचा विवरण दिलेले आहेत.

महानिम्बाला मराठीत मारूख किंवा महारूख असेही म्हणतात. याला हिंदी मध्ये महानीम किंवा अरडू म्हणून ओळखले जातें. याचें वनस्पती शास्त्रिय नांव *ऐलिएन्थस इक्सेलसा* (*Ailanthus excelsa*) आहे. हा सीमारोबिएसी (Simaroubaceae) वंशाचा प्रमुख सदस्य आहे. हा एक फारच जलद गतीने वाढणारा वृक्ष आहे आणि ओलसर क्षेत्रा पासुन ते कोरड्या (शुष्क) क्षेत्रा पर्यत आढळतो. हा एक मजबूत वृक्ष आहे, याची उंची 18 ते 20 मीटर आणि देठ 2.5 मीटर बेलनाकार असतो. याचे मूळ फारच मजबूत असते व दुसरे वृक्ष जसे बाभूळ, कडुनिंब, खैर इत्यादि बरोबर वेगाने वाढतो.

हा वृक्ष भारतात सर्वत्र आढळतों. मध्यप्रदेश व महाराष्ट्राचा उष्णदेशीय क्षेत्रांपासुन ते गुजरात व राजस्थानचा कोरड्या (शुष्क) क्षेत्रापर्यत दिसतो. मध्यप्रदेशात जबलपुर, सिवनी, बालाघाट, कटनी, मंड़ला, छिंदवाड़ा, डिंडोरी व महाराष्ट्राचा नागपुर, भंड़ारा, गोंदिया, वर्धा, चंद्रपुर, अमरावती, यवतमाळ, जळगांव, भुसावळ, जालना, अहमदनगर, औरगांबाद, पुणे, सातारा आणि नाशिक या क्षेत्रात फार मोठया प्रमाणात आढळतो. हा वृक्ष गुजरातचा अहमदाबाद, हिम्मतनगर, बनासकांटा, पालनपुर, भावनगर, मेहसाणा, खेड़ा व जुनागढ आणि राजस्थान चा बॉसवारा, बाडमेर, जोधपुर, पाली, सीकर, तिवरी, चुरू, सिरोही, माउंट आबू इत्यादी क्षेंत्रात मोठया प्रमाणात आढळतो. गुजरात व राजस्थान चा कोरड्या क्षेत्रात हया झाडाची विभिन्न प्रजाती अश्या कोरड्या वातावरणात राहण्यास उपयोगी आहे. आजकाल हा वृक्ष भारत भर सामाजिक वनीकरणासांठी फारच लोकप्रिय होत आहे.

महानिम्बांचा झाडाला जनावरांचा चा–यासाठी कापले जाते. याचा पानांत मोठ्या प्रमाणात प्रथिने असते. हयाचा पानांला बारीक पिसून घोल तयार करूत शरीरांवर उत्पन्न जख्मांना धुतल्यांवर उपयोग केल्या जाते. झाडांची साल कड़वी असते आणि विविध प्रकारांचा औषधी बनवायचा कामात उपयोग केल्या जातें. याचा उपयोग पुष्कळश्या आजार जसे आंत्र श्वास नलिकेचा शोम, दमाचा आजारांवर रामबाण औषध म्हणुन

वापरले जाते. याची साल स्वदेशी पशुरोग दूर करण्यास उपयोगात आणली जाते. महानिम्बांचा लाकडाचा उपयोग विविध प्रकारचा पॅकिंग साठी जसे मॅच बाक्स चा काडया, मासे पकडण्याचे जाळे, खेळणी व लाकडाचा लगदा बनविण्यासाठी उपयोगात आणली जातात.

महानिम्बांचा झाडाला 33 प्रकारचा विविध प्रजातीचे लहान मोठे किड़ लहान रोंपापासुन ते वृक्षापर्यत फार मोठ्या प्रमाणात नुकसान करतात. भारतात यामध्ये *अटीवा फबेरिसिएला* (*Attevia fabricella*) आणि *इलिगमा नारसीसस इन्डिका* (*Eligma narcissus indica*) हे दोन किटक प्रमुख आहेत. मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र व राजस्थान मध्ये या दोन्ही किटकाचा प्रादुर्भाव निरोगी रोपांवर व वृक्षांवर फार मोठ्या प्रमाणात आढळतो.

महानिम्बांवर किड़ीचा प्रादुर्भाव ऑक्टोबर पासुन ते फेब्रुवारी महिन्यापर्यत पाहिल्या जाते. *अटीवा फबेरिसिएला* चा अळया महानिम्बांचा निरोगी रोपांचा पानांना निस्पत्रित (अस्थिपंजर सारखे) करून टाकतात. यामुळे रोप मरून जातात. हया अळया महानिम्बांचा मोठ्या वृक्षावर पण आक्रमण करतात. अळयांची संख्या जास्त झाल्यावर झाड पूर्णपणे निस्पत्रित किंवा पान रहित होऊन जाते. अळयांचा प्रादुर्भावांमुळे लहान 1–2 वर्षाचे झाड मरून जातात आणि मोठे वृक्ष पान रहित होऊन जातात. फेब्रुवारी महिन्यात हया अळया फुल आणि बियांना पण खातात.

**किटकाची ओळख**– वयस्क पतंग (मॉथ) चा आकार मध्यम आणि लांबी 14–16 मीटर असते यामुळे या किटकाला ओळखणे सोपे असते. पतंगाचा शरीर लंबा असते हयाच बरोबर पंखाचा फैलाव जवळ–जवळ 20 मी. मी. आणि पुढचे पंख सोनेरी रंगाचे पांढरे गोल गोल बिंदू घेवून असते. मागचे पंख हलके राखाडी रंगाचे आणि झिल्लीदार असते. पोटाचा भाग पांढरे पारदर्शी बिंदू घेवून असते.

अळयाची पांचवी अवस्था 20–25 मी. मी. लांबीची असते, बरोबर हिरवे धूसर रंग त्यावर पिवळया रंगाची पटट्री असते आणि लहान लहान केस पण असतात. पूर्ण वाढ झालेली अळी एक प्रकारचा द्रव्य सोडते. हया द्रव्याचा साह्याने अळी आपल्या भोवती एक नाजूक जाळे विणते आणि नंतर कोशा (प्यूपा) मधे बदलते. कोश पातळ नांवा (बोट) सारखी आकार घेवुन असते. हयाचा रंग पिवळा भूरे पासुन ते नारंगी भूरे पर्यंत असते. संपूर्ण भारतात हा किटक आढळतो, हयामधे मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक और केरळ प्रमुख आहेत. हया किटकांचा मुख्य भोजन महानिम्ब व महानिम्बांची विविध प्रजातीचे लहान रोपे व मोठे वृक्ष आहेत.

**नुकसान करण्यांचा प्रकारः** *अटीवा फेब्रेरीसियेला* ची अळी नरम पानांना व लहान झाडांचे कोवळया नाजूक भागांना मुख्यंत खात असते. अळी सतत पानांना खांल्यामुळे एक जाळ बनते त्यामधे अळी फसून आपल भोजन करते. एका जाळयांमध्ये 2 ते 13 पर्यंत अळी असते. जास्त प्रादुर्भाव झाल्यांवर जाळयांमध्ये पुष्कळ अळयांचा साठा समुद्रासारखे दिसते. जर प्रादुर्भाव फुल उगवण्याचा अगोदर झाला असेल तर अळी फुलांना पण आपल आहार बनविते आणि नवीन कोवळया फुलांना आपल्या जाळयात फसविते.

**आर्थिक महत्व** : महानिम्बांचा किटक मोठ्या प्रमाणात नवीन आणि लहान झाडांचा कोवळया भागांना मुख्यतः नुकसान करते व झाड पान रहित होते. ज्यामुळे प्रकाश सश्लेषणची क्रिया बंद पडते व झाड मरून जाते. हे फुलांचे गुच्छे व बिया पण खातात, हयामुळें बिया बनने आणि निरोगी झाडांचे वाढणे थांबून जाते.

**नियंत्रण :**

1. एकाच वृक्षांची प्रजातीचे रोपे रोपवाटिकांमध्ये नाही ठेवले पाहिजे.
2. जेव्हा किटकांचा प्रादुर्भाव जास्त झाले असेल तर जुने झाडांची फांदी काढून पानांना जनावरांचा चा–यासाठी उपयोग करता येते.
3. मोनोक्रोटोफास 36 डब्यू. सी. क्लोरोफायरीफास 20 आणि फेनवलेट 20 चा मिश्रण 15 दिवसांचा अंतरा मधे 3 वेळा फवारणी केली तर झाड निरोगी राहते.

1. *अटीवा फेब्रेरीसियेला* ची अळीचे प्रादुर्भाव झालेले झाड

2.*अटीवा फेब्रेरीसियेला* ची अळी जाळी विणतांना 3.*अटीवा फेब्रेरीसियेला* वयस्क किटक (मॉथ)

# Wild edible mushroom *Morchella esculenta* (Guchii)

**Swaran Lata**

Forest Pathology Division, Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Mushrooms are heterotrophic organisms which are not able to prepare their own food and classified in thallophytae. Wild edible fungi are collected and eaten by people from ancient time not only for nutrition and taste, but also for healing properties. Archeological evidences reveal edible mushrooms associated with people living 13000 years ago in Chile. But eating of wild fungi was started several hundred years ago in China. Fungi serve many vital functions in forest ecosystems such as decomposition, nutrient cycling, sources of food for wildlife and shows symbiotic relationships with trees. Out of 14000 mushroom species nearly 3000 species are edible. *Morchella esculenta* is one of the most economically important and most highly prized of all edible mushrooms. *Morchella* has wide distribution in India and is very common in temperate forest of Himachal Pradesh, Uttrakhand and Jammu and Kashmir. It is commonly known as Guchii.

In Himachal Pradesh it is known by different names in different parts: e.g Chiun in Shimla district, Kiaun in Kullu district, Dunglu/ Jangmoch/ Rangmoch in Kinnaur district and Chamkaid in Chamba district. Body of *Morchella esculenta* is composed of hyphae. A mature hyphae forms fructifications, which protrude from the surface of substratum known as ascocarps or fruiting body. This mushroom usually grows naturally in forest floor rich in humus. The fruiting body or ascocarp appears above the soil soon after the rain fall. It appears and is collected in the month of April to June. It is mostly seen that the *Morchella* is most abundant in those forest which are affected by fire. It may be due to richness in calcium carbonate, calcium oxide or Iron oxide which promote mycelium growth of *Morchella.* Sometimes local people set fire in forest area to increase the production of *Morchella*. Such fires adversely affect the wild flora, fauna and ecosystem.

*Morchella esculenta* in natural habitat

Collected and dried *Morchella*

Fried *Morchella*

In India, 6 species of *Morchella* have been reported of which *Morchella esculenta* is most common type. In *Morchella esculenta* pileus is not distinctly longitudinally ridges, pits are rounded or irregular, longitudinally elongated, yellowish and become light brown when dry. Although genus *Morchella* is easily recognized, identification of its species is a difficult task because of its polymorphic nature. This saprophytic fungi is found in both conifer and broad leaf forest.

Morchella is delicious, healthy and nutritious due to which local people consider it as nutritious as meat. It contains proteins, polysaccharides, nucleic acids, minerals, vitamins and all the essential amino acids. Due to presence of polysaccharides and antioxidant it has several medicinal properties like anti-tumour, immunoregulatory and antiviral. They contain low fat and carbohydrate and low energy, which can be beneficial in low caloric diets. They are used in gravies, soups, sauces and vegetables. Most of the hill people use soup of *Morchella esculenta* in weakness and loss of appetite. It has been observed that protein and fiber value in these mushrooms are higher than various vegetables.

Most of the members of the family of hill people spend most of the time in collection of *Morchella*. Collection of this edible mushroom is also done by women during the gathering of fallen pine needles which are used as manure in the fields and apple orchards. Most of the collection of *Morchella esculenta* is done by shepherds, as they know the exact location of *Morchella* occurrence. It is mostly seen that *Morchella* is generally found at areas of previous collection. It is a local belief that only few lucky people can see and collect this beautiful mushroom. *Morchella esculenta* is collected, dried and then sold in the market. On an average each family collects 1 kg of *Morchella* every day and sells them at the rate of 6000 rupees per kg. Sometimes collection is very huge and in that condition villagers hold a meeting before proceeding for collection and decide the number of persons to be involved per family in collection due to which each family is equally benefitted. Species of *Morchella* were mainly collected from deodar,

fir and spruce forest and rarely found in other habitats such as community land and agricultural field boundary. In Himachal Pradesh maximum collection of *Morchella* is done from *Cedrus deodara* forest. This mushroom has several fold higher economic value as compared to important Himalayan herbs like *Aconitum heterophyllum, Saussurea costus, Hyocynamus niger, Capparis spinosa, Dactylorhiza hatagirea, Picrorhiza kurrooa* etc.

*Morchella esculenta* is similar to commercially cultivated mushrooms with regard to their cultural ability and chemical composition but cultivation technology is still not developed. Although hill people are earning efficient amount of money from this wild mushroom, the frequent practice of setting the forest ground on fire is leading to loss of forest biodiversity and disturbing the ecosystem. Climate change and excessive collection of immature fructifications may also be responsible for its disappearance. Due to huge economic potential many workers tried to cultivate the *Morchella esculenta* but nobody succeeded. If *Morchella esculenta* is successfully cultivated it will not only improve the socio-economic conditions of hill people but also conserve the biodiversity and ecosystem. Hence there is need to develop and standardize the cultivation technology for this wild edible mushroom.

# पर्यावरण सरंक्षण एवं संतुलन में सौर ऊर्जा का महत्व

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं ट्रीसा हेमल्टन

संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग/आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन प्रभाग

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

सूर्य, ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत है । यह दिन में हमारे घर को प्रकाशित करता, कपड़े व कृषि उत्पाद को सूखाता है तथा हमें गर्म रखता है । सौर ऊर्जा पर अधिकाधिक निर्भरता की दृष्टि पर्यावरण के हित में हैं। यह कहीं से विनाशकारी नहीं है । विस्थापन की त्रासदी से भी मुक्त है। यह सस्ती, सुलभ और सहज भी है। अनंत काल से सूर्य दिव्य शक्तियों का अक्षय स्रोत रहा है। विश्व की अनेक संस्कृतियों ने सूर्य को अपने जीवन का अभिन्न हिस्सा मानकर पूजा की है । अनेक संस्कृतियों के जीवनयापन की पूरी जीवन शैली सूर्य पर आधारित है । सूर्य के उदय के साथ दिन की शुरुआत और अस्त के साथ दिन की समाप्ति वास्तव में पूरी दुनिया में एक जैसी है । सूर्य हर क्षण विद्यमान होता है इसलिए अक्षय ऊर्जा का स्रोत है । पेड़-पौधों को सूर्य से ही ऊर्जा प्राप्त होती है। पृथ्वी पर ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य है। सूर्य से प्राप्त होने वाली ऊर्जा सभी जीवों व वनस्पतियों में ऊर्जा का संचार करती है । वैज्ञानिकों की मानें तो एक घंटे में प्राप्त होने वाली सौर ऊर्जा से एक साल तक पूरे विश्व की बिजली की जरूरत पूरी की जा सकती है । सूर्य पूरी धरती पर ऊर्जा की इस कमी को अनंत काल से पूरा करता आ रहा है । अगर हम जीवित रहते हुए विकास करना चाहते हैं तो सूर्य एक अद्भुत विकल्प हो सकता है।

वैश्विक ताप की वजह से नदियां सूख रही हैं । वर्ष भर हिमालयी या पर्वतीय नदियों में ही पानी रहता है । इन नदियों से प्राप्त जल-विद्युत देश की जरूरत के लिहाज से अपर्याप्त है । ताप विद्युत से काफी हद तक आवश्यकता की पूर्ति होती है, किंतु जल्द ही कोयला खत्म हो जाएगा तो ताप विद्युत की संभावनाएं भी समाप्त हो जाएंगी । परमाणु बिजली के लिए हमारे पास शोधन की

तकनीक नहीं है, जिसके लिए हम विदेशों पर निर्भर हैं, जबकि हमें पता है कि सतत विकास के लिए ऊर्जा सबसे बड़ी आवश्यकता है इसलिए अगर हम जीवित और स्वस्थ रहते हुए विकास करना चाहते हैं तो सूरज ही ऊर्जा का सबसे बेहतर विकल्प हो सकता है । हमें अपने जीवन के विकास का ताना-बाना इसी के इर्द-गिर्द बुनना होगा। प्राचीन काल से ही भारत में सूर्य से प्राप्त ऊष्मा का उपयोग किया जाता रहा है। बीज बोने से लेकर उसके भंडारण तक की पूरी प्रक्रिया में सौर ऊर्जा का उपयोग होता है।

भारत में जो सौर ऊर्जा आती है वह पूरे विश्व की संपूर्ण विद्युत खपत से कई गुना ज्यादा है । भारत में 270 दिन सूर्य की रोशनी पूरे दिन मिलती है। अब वक्त आ गया है कि हम सौर ऊर्जा का प्रयोग अधिक से अधिक करें और उसी पर निर्भर बनने के नए रास्ते खोजें, क्योंकि सौर ऊर्जा अक्षय है, जो हमारे पर्यावरण को प्रदूषण से बचाती है।

सौर ऊर्जा इतनी ताकतवर होती है कि इससे एक लाख मेगावाट ऊर्जा मात्र आठ हजार वर्ग किमी क्षेत्र से

हासिल की जा सकती है। सौर ऊर्जा का उद्योग एक नया लेकिन तेज़ गति से विकास कर रहा उद्योग है। पिछले 10 वर्षों के दौरान दुनिया में उन प्रौद्योगिकियों का त्वरित विकास हो रहा है जिनकी सहायता से सौर ऊर्जा को बिजली में बदला जा रहा है। केवल आर्थिक कारणों से ही यह बिजली घर-घर में नहीं पहुँचाई जा रही है। सौर ऊर्जा से बिजली का उत्पादन बहुत महंगा पड़ता है।

सौर ऊर्जा को बिजली में परिवर्तित करने के औद्योगिक पैमाने के प्रयोग लगभग तीस साल पहले शुरू हो गए थे। लेकिन पिछले दशक में ही सौर ऊर्जा संयंत्रों के निर्माण का काम बड़े पैमाने पर हुआ है। सौर ऊर्जा पर आधारित पहले बिजलीघर का निर्माण स्पेन में किया गया है। आजकल वहाँ सन् 2008 से दुनिया का सबसे बड़ा सौर ऊर्जा बिजलीघर चल रहा है। दुनिया भर में सैकड़ों सौर ऊर्जा बिजली संयंत्र काम कर रहे हैं। ऐसे बिजलीघर न केवल यूरोप और अमरीका में मौजूद हैं बल्कि जापान, थाईलैंड, भारत, चीन में भी काम कर रहे हैं।

सौर पैनलों और उनसे संबंधित उपकरणों के उत्पादन की दृष्टि से चीन दुनिया में पहले स्थान पर है। उसका कुछ ही सालों में नए सौर एवं तापीय विद्युत संयंत्रों का निर्माण करने का इरादा है। चीन को ऊर्जा संसाधनों की सख्त ज़रूरत है। इसलिए वह इन परियोजनाओं के लिए पैसा खर्च करने से भी कोई संकोच नहीं कर रहा है। बेशक, कोई भी उत्पादन उसके प्रारंभिक चरण में महंगा ही पड़ता है, लेकिन समय बीतने के साथ साथ वह सस्ता हो जाता है। इस सिलसिले में कारगर ऊर्जा उपयोग केंद्र के कार्यकारी निदेशक ईगर बश्मकोव ने कहा -

*सौर ऊर्जा से बनी बिजली को अधिक सस्ती और सुलभ बनाने के लिए वैज्ञानिक खोजों का काम लगातार जारी है। किसी भी ऊर्जा संसाधन के साथ ऐसा ही होता है। आप को याद होगा कि शुरूआत में तेल कैसे पैदा किया गया था और वह कितना महंगा था। परमाणु ऊर्जा के विकास के संबंध में भी ऐसा ही हुआ था। सौर ऊर्जा के संबंध में हमें पहले ही काफ़ी अनुभव हो चुका है। इसलिए हमारे पास सौर ऊर्जा पर आधारित बिजली की उत्पादन-लागत कम करने के बहुत अच्छे अवसर मौजूद हैं।*

विशेषज्ञों का मानना है कि किसी भी पदार्थ की मात्रा यकीनन उसकी गुणवत्ता में बदल जाती है। दुनिया भर में कई निजी कंपनियां सरकारी एजेंसियों के समर्थन से ठोस परियोजनाएं बना रही हैं। उदाहरण के लिए संयुक्त अरब अमीरात के मसदार शहर में "भविष्य के शहर" का निर्माण किया जा रहा है। वहाँ बिजली का उत्पादन "हरित प्रौद्योगिकियों" की सहायता से किया जाएगा। सौर ऊर्जा बिजलीघर सीधे इमारतों की छतों पर बनाए जाएंगे। सहारा में बड़े पैमाने की *डेज़र्टेक* परियोजना को पूरे ज़ोरों से अमली जामा पहनाया जा रहा है। एक योजना के अनुसार, चालीस साल में वहाँ इतनी ज़्यादा बिजली पैदा की जाएगी कि वह पूरे यूरोप में उपभोक्ताओं की बीस प्रतिशत आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी।

अगर सौर ऊर्जा की लागत कम करने में हमें सफलता मिलेगी तो पूरी दुनिया में सौर ऊर्जा-बिजलीघरों का निर्माण होने लगेगा। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि यदि उपभोक्ता स्वच्छ ऊर्जा के लिए पैसा नहीं दे सकेंगे तो मानव-जाति आगे भी तेल, प्राकृतिक गैस और लकड़ी का उपयोग तब तक करती रहेगी जब तक कि हमारी पृथ्वी इन संसाधनों से पूरी तरह वंचित नहीं हो जाएगी, या फिर वैज्ञानिक जब तक किसी बिलकुल सस्ती प्रौद्योगिकी की खोज नहीं कर लेंगे।

भारत संसार के कुछ उन गिने-चुने देशों में शामिल है, जहाँ सत्रह सौ किलोवॉट सौर ऊर्जा प्रति वर्गमीटर प्रति वर्ष की दर से गिरती है। सूर्य की यह तेजी पूरे भारत में लगभग वर्ष भर रहती है और सर्दी तथा गर्मी

में इसकी तेजी में ज्यादा फर्क नहीं पड़ता । इस देश में बारिश के मौसम में भी कई जगह अच्छी-खासी धूप पड़ती है। इस वैकल्पिक और ताकतवर ऊर्जा का सही उपयोग कर देश की ऊर्जा समस्या को काफी हद तक सुलझा सकती है।

सौर ऊर्जा इतनी ताकतवर होती है कि इससे एक लाख मेगावाट ऊर्जा मात्र आठ हजार वर्ग किमी क्षेत्र से हासिल की जा सकती है । मतलब भारत के हिसाब से उपयुक्त सौर ऊर्जा संयंत्र लगाकर यह उपलब्धि हासिल की जा सकती है । भारत की कुल ऊर्जा जरूरत (इंस्टॉल्ड कैपेसिटी) वर्तमान में एक लाख पैंतालीस मेगावॉट है । मतलब मात्र आठ हजार वर्ग किमी क्षेत्र से हम इतनी सौर ऊर्जा प्राप्त कर सकते हैं कि वह भारत की कुल ऊर्जा जरूरत का एक बड़ा भाग पूरा कर सकती है । जबकि हम एक लाख पैंतालीस मेगावॉट ऊर्जा को कई प्रकार से प्राप्त करते हैं। इनमें पन (पानी) ऊर्जा, ताप ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा और पवन ऊर्जा आदि शामिल हैं।

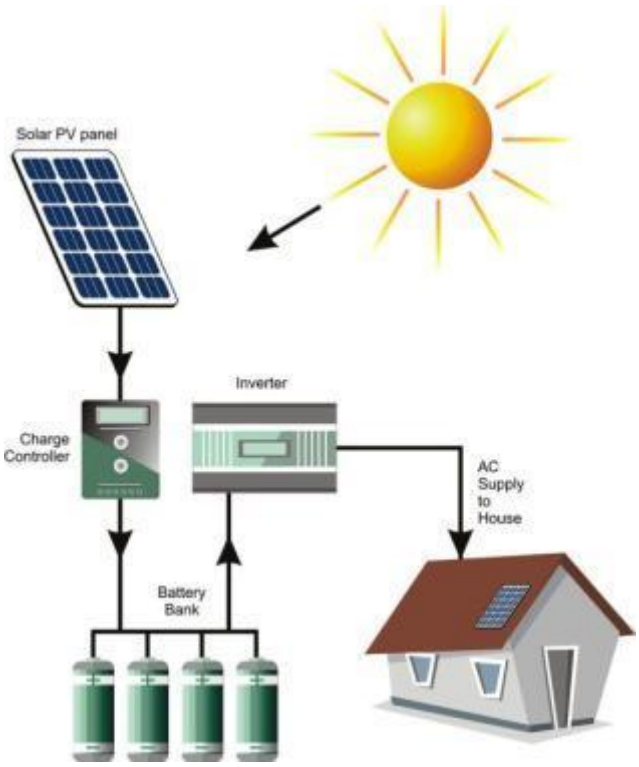


सौर ऊर्जा बिजली के एक बड़े विकल्प के रूप में उभरी है। इससे कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन भी नहीं होता, जिसके लिए पूरी दुनिया चिंतित है। भारत में इसके उत्पादन की काफी अनुकूल स्थितियां हैं। 'सौर ऊर्जा सूर्य से प्राप्त शक्ति को कहते हैं। इस ऊर्जा को ऊष्मा या विद्युत में बदल कर अन्य प्रयोगों में लाया जाता है।

सूर्य से सौर ऊर्जा प्राप्त कर उसे प्रयोग में लाने के लिए सोलर पैनलों की आवश्यकता होती है। सोलर पैनलों में सोलर सेल होते हैं , जो ऊर्जा को प्रयोग करने लायक बनाते हैं। भारतीय भूभाग पर पांच हजार लाख किलोवॉट घंटा प्रति वर्ग मीटर के बराबर सौर ऊर्जा आती है। साफ धूप वाले दिनों में सौर ऊर्जा का औसत पांच किलोवॉट घंटा प्रति वर्ग मीटर होता है। एक मेगावॉट सौर ऊर्जा के उत्पादन के लिए लगभग तीन हेक्टेयर समतल भूमि की जरूरत होती है।

वर्तमान ऊर्जा-संकट का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर पड़ रहा है। कोयले और तेल की कमी से किसानों, कारखानों और घरेलू उपयोग के लिए बिजली का नियमित मिलना कठिन हो गया है। आज साधारण जन यह जानने के लिए उत्सुक है कि इस संकट का निवारण कब और कैसे होगा ?

खनिज तेल की कमी और उसके मूल्यों में अत्याधिक वृद्धि के कारण हमें सौर-ऊर्जा, परमाणु-ऊर्जा, तप्तकुंड ऊर्जा, ज्वार-भाटा तथा पवन-ऊर्जा की ओर ध्यान देना होगा, क्योंकि ऊर्जा के ये स्रोत सस्ते तथा न खत्म होने वाली ऊर्जा हैं । बिजली हमारी मूलभूत आवश्यकता है, मगर जिस रफ्तार से इसकी खपत हो रही है, उस हिसाब से भविष्य में हम इससे वंचित हो सकते हैं।

हम सभी कई उद्देश्यों के लिए सालों से सूर्य की ऊर्जा का उपयोग कर रहे हैं, लेकिन हाल ही में हमने बिजली पैदा करने के लिए सूर्य की ऊर्जा का उपयोग करना शुरू कर दिया है । भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलुरू से जुड़े दो वैज्ञानिकों द्वारा किये गये ताज़ा अध्ययन का नतीज़ा देश के विभिन्न हिस्सों में जारी परमाणु ऊर्जा विरोधी आंदोलनों को नयी ताक़त देने का काम कर सकता है । हीरेमठ मितवचन और जयरमन श्रीनिवासन द्वारा किया गया यह साझा अध्ययन देश में सौर ऊर्जा की अपार संभावनाओं को उजागर करते हुए परमाणु ऊर्जा के पैरोकारों के इस दावे को ख़ारिज करता है कि देश को

परमाणु ऊर्जा की सख़्त ज़रूरत है | परमाणु परियोजनाओं से प्रभावित लोग ऐसा विकास नहीं चाहते जो उन्हें अपनी ज़मीन, आजीविका, परंपरा, संस्कृति से उजाड़ दे और प्राकृतिक संसाधनों के विनाश को न्यौता दे ।

अनुमान है कि 2070 तक देश की ऊर्जा ज़रूरत सालाना 3400 टेरावाट (एक टेरावाट 114 मेगावाट के बराबर होता है) हो चुकी होगी। इसे केवल सौर ऊर्जा के ज़रिये पूरा करने के लिए देश पूरी तरह सक्षम है। इसके लिए देश की ग़ैर ऊपजाऊ और बेकार पड़ी ज़मीन के कुल 4.1 प्रतिशत हिस्से की ज़रूरत होगी। सौर ऊर्जा के अलावा अगर पूरी क्षमता के साथ अन्य दूसरे साधनों का भी उपयोग किया जाये तो ज़मीन की यह ज़रूरत एक अंक घट कर 3.1 प्रतिशत रह जायेगी । सौर ऊर्जा का भरपूर इस्तेमाल करने में ज़मीन की उपलब्धता कोई बाधक तत्व नहीं है ।

हम बार-बार विकास और तकनीक की बात करते हैं, उसकी गति में रह रहकर ब्रेक क्यों लग जाता है ? इसका एक मात्र कारण है विकास के लिए बुनियादी जरूरत में कमी का होना। और वो बुनियादी जरूरत है बिजली। कोई देश कैसे वैश्विक ताक़त बनने के ख़्वाब देख सकता है, जिसकी आधी से ज्यादा आबादी बिजली की बड़ी किल्लत से दो-चार हो ।

वैसे तो दक्षिण एशिया में ऊर्जा की विशाल क्षमता होने बात कही जाती रही है, लेकिन इसी क्षेत्र के देशों में सबसे ज्यादा लोग बिजली संकट से परेशान हैं । राजधानी दिल्ली ही नहीं भारत के कई राज्यों में बिजली की भारी किल्लत है। बिजली संकट इतना गंभीर है कि गाँव तो क्या शहरों में भी भारी कटौती हो रही है या फिर किसी न किसी तकनीकी ख़राबी से अकसर सप्लाई बंद हो जाती है। हालत ये है कि शहरों में गगनचुंबी मॉल्स भी अपनी बिजली का इंतज़ाम करने के लिए जेनरेटर पर निर्भर रहते हैं । दिल्ली से सटे गुड़गांव जैसा साइबर सिटी हो या बैंगलोर जैसी सिलिकन वैली, सभी जगहों पर बिजली की समस्या आम है ।

अगर ग्रामीण इलाक़ों की बात करें तो वहां हालत और भी बदतर है। कई राज्यों की स्थिति यह है कि अभी गाँवों तक बिजली ही नहीं पहुँची है। जहाँ बिजली पहुँच भी गई है वहाँ कभी कुछ घंटों के लिए ही बिजली आती है और कहीं कभी-कभी आती है । इसका एक उदहारण बिहार में मुजफ्फरपुर का रतनौली गांव है, जहां बिजली के खंभे तो जरूर लगे हैं लेकिन वहां बिजली की गारंटी कोई नहीं दे सकता। रतनौली जैसे देश में कई और भी गांव हैं जहां बिजली तो दूर उसके खंभे तक नहीं मिलेंगे ।

बिजली की ऐसी विकट समस्या के रहते हुए क्या भारत वास्तव में महाशक्ति बन सकता है ? सच कहें तो बिल्कुल नहीं। 21 सदी में बिजली के बिना विकास नामुमकिन है। चलिए थोड़ी देर के लिए देश की भौगोलिक संरचना को जिम्मेदार मानते हुए कह दें कि अलग-अलग भौगोलिक स्थिति होने से देश के कई इलाकों तक बिजली नहीं पहुंच पाया है। लेकिन, सूर्य की रोशनी किसी भी संरचना की मोहताज नहीं होती। मालूम हो कि दुनिया में परंपरागत उर्जा स्रोत न केवल सीमित है, बल्कि हमें कई उर्जा उत्पादों के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। भारत में फिलहाल एअक लाख सत्तर हजार मेगावॉट से ज्यादा बिजली की उत्पादन क्षमता है और बिजली की वार्षिक मांग चार फीसदी की दर से बढ़ रही है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक व्यस्त घंटों में बिजली की दस फीसदी की कमी रहती है।

विशेषज्ञों का मानना है कि ऊर्जा तंत्र में इतनी भारी गड़बड़ी का मूल कारण बिजली की आपूर्ति में कमी है। उनके मुताबिक दक्षिण एशियाई देश बिजली की मांग और आपूर्ति के अंतर को अपने विशाल ऊर्जा संसाधनों और दूसरे देशों के साथ बिजली का लेन-देन कर काफी हद तक कम कर सकते हैं। लेकिन ये कोई स्थायी निवारण नहीं हो सकता।

पिछले दिनों ग्रीनपीस की एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत को वैकल्पिक उर्जा प्रणालियों में निजी और सरकारी स्तर पर 2050 तक छैः लाख दस हजार करोड़ रूपये सालाना निवेश करने की जरूरत बताई गई थी। इस निवेश से भारत को जीवाश्म ईंधन पर खर्च किये जानेवाला सालाना एक ट्रिलियन रूपये की बचत होगी और इस नये निवेश के कारण अगले कुछ सालों में ही 2020 तक भारत रोजगार के 24 लाख नये अवसर भी पैदा कर सकेगा। अगर भारत सरकार रिपोर्ट के आधार पर इन उपायों को लागू करती है तो 2050 तक भारत की कुल उर्जा जरूरतों का बयानबे प्रतिशत प्राकृतिक संसाधनों से प्राप्त किये जाएंगे। और सबसे चौंकानेवाली बात यह होगी उस वक्त भी हम आज से भी सस्ती बिजली प्राप्त कर सकेंगे। एक रिपोर्ट के मुताबिक प्राकृतिक स्रोत से प्राप्त बिजली की कीमत 2050 में 3.70 रूपये प्रति यूनिट होगी।

ऐसे में अगर भारत सौर ऊर्जा को सामान्य बिजली में बदलने का प्रयोग कामयाब हो गया तो गाँवों और कस्बों में न केवल कंप्यूटर शिक्षा, बल्कि दूसरे अनेक क्षेत्रों में भी रोज़गार पनप सकते हैं। सौर उर्जा के माध्यम से जहां किसान खेतों की सिचाई सोलर पंप से कर सकेंगे वहीं अंधेरे में जीवन व्यतीत कर रहा ग्रामीण भारत का बड़ा हिस्सा भी रोशनी से जगमगा उठेगा।

इसके लिए जरूरत इस बात कि है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सौर उर्जा और उससे जुड़े साजोसामान का चलन बढाया जाए। और फिर वो दिन दूर नहीं होगा जब गांवों में साइकिल मरम्मत की दुकानों की तरह उन इलाकों में भी सौर उर्जा से चलने वाले छोटे-मोटे उपकरणों का निर्माण और मरम्मत की दुकानें भी देखे जा सकते हैं, जो स्थानीय रोजगार भी उपलब्ध कराएगा।

धरती के गर्भ से कोयला निकाल कर हम बिजली बना सकते हैं, किंतु कितने दिन तक ? नदियों से जलविद्युत उत्पन्न कर सकते हैं, किंतु कितने दिनों तक ? धरती सीमित है , पानी सीमित है, एक न एक दिन कोयला एवं पानी को खत्म होना ही है, तब ऊर्जा प्राप्ति का एकमात्र स्रोत सौर ऊर्जा (सूर्य) ही होगा। इसलिए हम आज से ही सूर्य की उपासना क्यों न शुरू कर दें, ताकि प्रकृति का संतुलन एवं पर्यावरण का संरक्षण हो सके। यही प्रकृति प्रदत्त विधान है। इसका पालन यदि हमने स्वेच्छा से नहीं किया तो प्रकृति हमें स्वीकार कराने के लिए एक बार फिर हमें किसी न किसी कहर का शिकार बना सकती है।

# किटक रोगजनक टोळ (निमॅटोडस) – एक प्रभावी जैविक किटकनाशक

**डॉ.संजय पौनीकर आणि डॉ. नितिन कुलकर्णी**

वन किटक विज्ञान शाखा, उष्ण कटिंबधिय वन संशोधन संस्था, जबलपुर

जेव्हा पासुन रासायनिक कीटकनाशकांचा दुष्प्रभाव पर्यावरण, मानव व अन्य फायदेशीर प्राण्यांवर पडू लागला तेव्हा पासुन शास्त्रज्ञांनी इतर वैकल्पिक कीटकनाशाचां जे पर्यावरण, मानव व अन्य फायदेशीर प्राण्यांवर क्षति न पोहचवणारे जैविक कीटकनाशकांवर (Biopesticides) संशोधन करणे प्रांरभ केले. यासाठी विविध प्रकारचां जैविक कीटकनाशकांवर संशोधन करून नंतर काही प्रभावी जैविक कीटकनाशकाचा शोध लावला जे किटक नियंत्रणासाठी फारच उपयोगी ठरले, ते याप्रकारे आहेत. जैविक कीटकनाशकांमधे वनस्पती पासुन काढले गेलेले रसायन (Botanical pesticides), परजीवी (Parasites), रोगजनक (Pathogens), सूक्ष्मजीव जसे आदिजीवसंघ (Protozoa), बुरशी (Fungi), जीवाणू (Bacteria), विषाणू (Viruses), भक्षक किटक (Predators) व अन्य जीवजंतू आणि किटक रोगजनक टोळ किंवा निमॅटोडस (EPN-Entomopathogenic Nematodes) आहेत. यामधे आजकाल किटक रोगजनक टोळ (ई.पी.एन.) चा उपयोग जगांमधे एक प्रभावी जैविक किटकनाशकांचा रूपात हानीकारक किड़ीवर मोठ्या प्रमाणात केले जात आहे. किटक रोगजनक टोळ हा एक अपुष्ठवंशीय (Invertebrates) प्राणी आहे, हा प्राणी जगताचा (Animal Kingdom) फायलम निमेटोडा (Phylum: Nematoda) के अन्तर्गत गटात वर्गीकरण करण्यात आला आहे.

आज जगात 20,000 प्रजाती किटक रोगजनक टोळच्या (ई.पी.एन.) ओळख झाली आहे. ही एक अशी टोळ आहे, ती फक्त हानीकारक किड़ीनांच मारते. हया टोळचे रोगजनक ज्युवेनाईलस् (Infective Juveniles-IJs) हानीकारक किडीनांचा शरीरात नैसर्गिक रीत्या उघडया छिद्रांतून जसे तोडां किंवा त्वचाद्वारे (Cuticle) किटकांचा शरीरात प्रवेश करून घातक जीवाणूनां सोडतात आणि किटकाचा अळीला मारून टाकतात व अळीचा रंग जीवाणूमुळे बदलते आणि अळीचे कॅडावर (Cadavers) मधे बदल होतो. चार पांच दिवसांनी कॅडावर मधून रोगजनक ज्युवेनाईलस (IJs) बाहेर पडतात. हीच अवस्था नंतर नैसर्गिक रीत्या किटकांचा शरीराचा उघडया छिद्रामधे शिरतात आणि किटकांमधे रोग पसरवतात व हयालाच किटक रोगजनक टोळ (ई.पी.एन) असे म्हणतात.

किटक रोगजनक टोळचे (निमॅटोड) वैशिष्टें याला दुस–या जैविक किटकनाशकांपासुन फारच प्रभावी किंवा परिमाणकारक जैविक किटकनाशक बनवतात. याची काही खास वैशिष्टें पुढील प्रमाणे आहेत– हे फारच जलद (24 किंवा 48 तासात) गतीने किटकाला मारून टाकतात, मोठ्या प्रमाणात उत्पादन (Large scale production) करू शकतो, पश्चिमी देशात याला नोंदणीकृत (Registration) करण्याची आवश्यकता नाही आहे, पुष्कळशा किटकांवर असरदार (प्रभावी) आहे, किटकांमध्ये विष (Pathogenicity) फैलवण्याची दर उंच आहे, रासायनिक संकेत (Chemical clue) द्वारे किटकांपर्यत पोहचतात, प्रयोगशाळेत सुविधानुसार (*in vitro*) उत्पादन करू शकतो, पृष्ठवंशीय प्राण्यांवर, वृक्षांवर, लाभदायक जीवजंतु तथा मानवांसाठी सुरक्षित आहे, रासायनिक किटकनाशक जसे जैविक किटकनाशक (बुरशी, जीवाणू व वनस्पती किटकनाशक) बरोबर मिसळून उपयोग करू शकतो. या प्रमुख वैशिष्टेंमुळे हयांना एकात्मिक किटक व्यवस्थापन (IPM-Integrated Pest Management) मध्ये समाविष्ट केले आहे. म्हणुन जगात आज काल कृषि (Agricultural insect pests) तसेच वनांचे (Forest insect pests) विविध

किटकांचा प्रजाती वर किटक रोगजनक टोळचा उपयोग करण्यात येत आहे.

सर्व प्रथम शास्त्रज्ञ ग्लेसर ने 1932 मधे किटक रोगजनक टोळला एक जैविक किटकनाशक म्हणुन जगाला ओळख करून दिली. त्यांनी हया किटक रोगजनक टोळ, *स्टीईर्नर्नेमा ग्लेसरी* (*Steinernema glaseri*) ला जापानी भृंगावर (Japanese Beetles) शोधले. किटक रोगजनक टोळचे स्टीईर्नेनिमाटीडी और हेटरोरहाब्डिटिडी नावाचे दोन वंश है। जे क्रमशः स्टेईर्नेनिमेटिडेडीए (Steinernematidae) आणि हेटरोरहाब्डिटिडीए (Heterorhabditidae) कुळाशी संबंधित आहे. व जीनोरहाब्डस (*Xenorhabdus*) आणि फोटोरहाब्डस (*Photorahbdus*) वंशाचे सहजीवी जीवाणू *(Symbiotic-Bacteria)* चा बरोबर सहयोग ठेवतात. हे मातीत राहणारे, किटकांवर जगणारे परजीवी आहेत, हयांचा उपयोग किटक निंयत्रणासाठी जैविक कीटकनाशक चा रूपात जगभर करत आहे.

भारतीय शास्त्रज्ञ राव व मंजुनाथ ने 1966 मध्ये भारतात प्रथमच परदेश्यातून आयात केलेले डी. डी.–136 नावांचे ई.पी.एन. प्रजातीचा प्रयोग धान, ऊस आणि सफरचंदचा विविध प्रजातीचा किटकांला निंयत्रित करण्यासाठी केला होता. नंतर विविध शास्त्रज्ञांनी ई.पी. एन.चा वापर शेतीचे किटक जसे कटवर्म, रागीचा गुलाबी बोरर, धानाचा पान फोल्डर, देठ छिद्रक, पॅडी गाल मीज, ऊस छिद्रक, पांढरी भृंग, लाल केसवाली इल्ली इत्यादि ला प्रयोगशाळेत तसेच प्रायोगिक क्षेत्रात निंयत्रित करण्यासाठी उपयोगात आणले गेले आहेत.

किटक रोगजनक टोळचा अधिकाधिक किडीचां विरूध्द् उपयोग करणे, त्याचा जीवनचक्राचा अभ्यास करणे तसेच त्यांची गुणवत्ता, जैव क्षमता व प्रायोगिक क्षेत्रात किड़ीवर प्रयोग करणे इत्यादि क्षेत्रात प्रगती झाली आहे. आता भारतात ई.पी.एन. *स्टीईर्ननिमा* ची काही नवीन प्रजाती जसी *स्टीईर्ननिमा थर्मोफिलियम, स्टीईर्ननिमा सिमी, स्टीइर्ननिमा मसूदी* शोधून काढली आहे. भारतात ई.पी.एन.चा उपयोग कृषि चे विविध किटकांचा प्रजातीवर नियंत्रण करणे हयावर मोठ्या प्रमाणात संशोधन सुरू आहेत. पण आज पर्यंत हया ई.पी. एन.चा उपयोग महत्वाचे वनांचे विविध प्रजातीचां किटकांवर नियंत्रण करण्यात झाले नाहीत.

भारतात प्रथमच उष्ण कटिबंधिय वन संशोधन संस्था, जबलपुर येथे ई.पी.एन.चा उपयोग वनांचे किटकांवर केले जात आहे. आता पर्यंत ई.पी.एन.चा सात स्थानिक/देशी प्रजाती (Native species/strains) जे मध्य भारताचा स्थानिक वातावरणातून शोधली आहे. एक प्रजाती ज्यांचे नाव *स्टीईर्नेनिमा धार्नायी* (TFRIEPN-15, *Steinernema dharnaii*) आहे, जी विज्ञांनासाठी नवीन प्रजाती (*New- to -Science*) आहे, ही प्रजाती प्रथमच मध्य भारतातून (central India) शोधली गेली आहे.

आता पर्यत उष्ण कटिबंधिय वन संशोधन संस्थे मधे काही स्थानिक प्रजाती आणि काही बाहेरचा प्रजाती (राष्ट्रीय कृषि महत्वांचे किटक संशोधन संस्था, NBAII-National Bureau of Agriculturally Important Insect) बेंगलुरू मधुन आणली गेली आहे. त्याचां उपयोग वनांचे काही किटक जसे पांढरी अळी, उदई सागवन, बांबू आणि सिरसचा किटकांवर करण्यात आला आहे. जगातल्या बहुतेक देशात ई.पी.एन.चा उपयोग कृषि, फळबाग, घर, बगीचों, वन आणि वृक्षारोपण पिकांचे किटकाचा विविध प्रजातीचे ला नियंत्रण करण्यासाठी यशस्वीरित्या केल्या जात आहे. आंतरराष्ट्रीय बाजारात ई. पी.एन.चा व्यावसायिक उत्पादन (Products) उपलब्ध आहेत. हयांचा उत्पादनचा उपयोग विस्तृत किटकांला नियंत्रित करण्यात येत आहे. आता पर्यंत *स्टीईर्नेनिमा* प्रजातीचे चार आणि *हिटरोरहाब्डिटिडिस* प्रजातीचे एक व्यावसायिक उत्पादन 21 किटकांवर नियंत्रण करण्यात विविध देशात परिणामकारक पाहिला गेला आहे. ई.पी.एन. ची 17 प्रजाती चे नोंदणीकृत उत्पादन यू.ए.एस.,यू.के., स्विटजरलैंड, जर्मनी आणि कॅनडा मधे उपलब्ध आहे.

इतक्यात ई.पी.एन.चा उपयोग देशाचा प्रमुख विविध शोध संस्थेत केला जात आहे, यामध्ये उष्ण कटिबंधिय वन संशोधन संस्था, जबलपुर पण आहे. यांचा उपयोग करण्याचा मुख्य हेतू हाच आहे, की वनांचे, कृषि व अन्य पिकांचे हानीकारक विविध प्रजातीचे किटकांचा

प्रादुर्भाव आणि आर्थिक क्षती कमी व्हावी तसेच पर्यावरण, मानव आणि अन्य जीवजंतुना रासायनिक किटकनाशकापासुन होणारे हानीकारक दुष्प्रभावांपासुन पण वाचवणे हा एक प्रमुख हेतू असण्याकारणाने हया जैविक किटकनाशकांचा उपयोग करणे अत्यावश्यक आहे.

**1. किटक रोगजनक टोळ चे कडॉवर**

**2. किटक रोगजनक टोळ चे कडॉवर मधून बाहेर येत असतांना**

# Know your Biodiversity

**Tresa Hamalton**

Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

***Butea monosperma***

*Butea monosperma* (Palaash) is native to tropical and sub-tropical parts of the Indian Subcontinent and Southeast Asia. It is also called Flame of the Forest or Parrot Tree. It is a medium sized, dry season-deciduous tree, growing to 15 m tall. It is a slow growing tree; young trees have a growth rate of a few feet per year. The leaves are pinnate with 8–16 cm petiole and three leaflets, each leaflet is 10–20 cm long. The flowers are 2.5 cm long, bright orange-red, and produced in racemes up to 15 cm long. The fruit is a pod 15–20 cm long and 4–5 cm broad.

Palaash is the State Flower of Madhya Pradesh. In West Bengal, it is associated with spring. In the state of Jharkhand, Palash is associated with the folk tradition describing it as the forest fire. It is said that the tree is a form of Agnidev, God of Fire. In Telangana, these flowers are specially used in the worship of Lord Shiva on occasion of Shivratri. In Theravada Buddhism, *Butea monosperma* is said to have been used as the tree for achieving enlightenment, or Bodhi by the second Lord Buddha called 'Medhankara'. In Sanskrit also the flower is extensively used as a symbol of the arrival of spring. In villages of many parts of India, for example in Maharashtra, this tree provides leaves that are used either with many pieced together or singly to make a leaf-plate for serving a meal.

*Butea monosperma* is used for timber, resin, fodder, medicine, and dye. The wood is dirty white and soft and durable under water and hence is used for well-curbs and water scoops. Good charcoal can be obtained from it. The leaves are usually very leathery and not eaten by cattle. The gum is known as Bengal Kino and is considered valuable by druggists because of its astringent qualities and by leather workers because of its tannin. The gum, called *kamarkas* in Hindi, is used in certain food dishes. The flowers are used to prepare a traditional Holi colour. It is also used as a dyeing color for fabric. This plant kills mosquitoes; they are attracted by the smell and color of the flower, and eggs that are laid into the liquid within the flower will never hatch.

***Rucervus duvaucelii***

*Rucervus duvaucelii* (syn. *Cervus duvaucelii*), also called barasingha or swamp deer, is a species distributed in the Indian subcontinent. The specific name *duvaucelii* commemorates the French naturalist Alfred Duvaucel. Barasingha, meaning "twelve-tined", is the state animal of Madhya Pradesh. The swamp deer differs from all the Indian deer species in that the antlers carry more than three tines. Three subspecies are currently recognized: *R. d. duvauceli, R. d. branderi* and *R. d. ranjitsinhi*. Mature stags have 10 to 14 tines, and some have been known to have up to 20. In central India, it is called *goinjak* (stags) or *gaoni* (hinds).

The barasingha is a large deer with a shoulder height of 110 to 120 cm and a head-to-body length of nearly 180 cm. Its hair is rather woolly and yellowish brown above but paler below, with white spots along the spine. The throat, belly, inside of the thighs and beneath the tail is white. In summer the coat becomes bright rufous-brown. The neck is maned. Females are paler than males. Young are spotted. Average antlers measure 76 cm round the curve with a girth of 13 cm at mid beam. Stags weigh 170 to 280 kg and females are less heavy, weighing about 130 to 145 kg.

Swamp deer are mainly grazers. They feed largely on grasses and aquatic plants, foremost on *Saccharum*, *Imperata cylindrica*, *Narenga porphyrocoma*, *Phragmites karka*, *Oryza rufipogon*, *Hygroryza* and *Hydrilla*. In central India, the herds comprise on average about 8–20 individuals, with large herds of up to 60. There are twice as many females than males. When alarmed, they give out shrill, baying alarm calls. Captive specimens live up to 23 years.

In the 1960s, the total population was estimated at 1600 to 2150 in India and about 1600 in Nepal. Today, the distribution is much reduced and fragmented due to major losses in the 1930s–1960s following unregulated hunting and conversion of large tracts of grassland to cropland. Swamp deer occur in the Kanha National Park of Madhya Pradesh, in 2 localities in Assam, and in only 6 localities in Uttar Pradesh. They are regionally extinct in West Bengal. They are also probably extinct in Arunachal Pradesh. A few survive in Assam's Kaziranga and Manas National Parks.

Swamp deer lost most of its ancestral range because wetlands were used for agriculture and their habitat was reduced to small and isolated fragments. The remaining habitat in protected areas is threatened by change in river dynamics, reduced water flow during summer, increasing siltation, and further degraded anthropogenic activities. The populations outside protected areas and seasonally migrating populations are threatened by poaching for antlers and meat. In 1992, there were about 50 individuals in five Indian zoos. It is extinct in Pakistan and Bangladesh. *Rucervus duvaucelii* is listed on CITES Appendix I. In India, it is included under

Schedule I of the Wildlife Protection Act of 1972.

# Humming bees

*Humming bee've made*

*A summerhome for 'em*

*Of blooming nectar hives*

*That hide & seek from Sun...*

*What have them to fight*

*The sugar that drips their hives*

*The lure of sights & smell*

*Is one that's far from cure...*

Nameless